Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना

डॉ. मनीषा शंखवार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सारांश - नासिरा शर्मा के उपन्यास हिंदी साहित्य में सामाजिक चेतना के सशक्त वाहक हैं। उनकी रचनाएँ समाज की जटिलताओं, विशेष रूप से नारी की स्थिति, धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक असमानता, और मानवीय संवेदनाओं को गहनता से उजागर करती हैं।नासिरा शर्मा के उपन्यासों में नारी की स्थिति और उनके संघर्ष को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। वे मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा, रूढ़ियों, और अंधविश्वासों के खिलाफ उनकी लड़ाई को उजागर करती हैं। उदाहरण के लिए, शाल्मली में नायिका शाल्मली सामाजिक बंधनों को तोड़कर अपने करियर और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती है, जो नारी की जागृत चेतना को दर्शाता है। पारिजात में भी नारी की वेदना और उसकी आंतरिक चेतना का चित्रण है, जो सामाजिक परिवर्तन की माँग करता है।

बीज शब्द : स्त्री विमर्श, भारतीय समाज, हिन्दी उपन्यास, नासिरा शर्मा, सामाजिक चेतना ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। एक साहित्यकार समाज को जिस रूप में देखता है, जिस रूप में महसूस करता है वह उसे उसी रूप में अपने साहित्य में अभिव्यक्त करता है। साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रित संबंध होता है ठीक उसी प्रकार समाज और व्यक्ति में भी अन्योन्याश्रित संबंध होता है। अरस्तू ने ठीक ही कहा है कि- "व्यक्ति से समाज का अस्तित्व है और समाज में ही व्यक्ति की सार्थकता है।"[1] व्यक्ति, समाज और साहित्य के परस्पर संबंधों को एक साहित्यकार अपने साहित्य में विवेचित और विश्लेषित करता है। वह अपने समाज के यथार्थ को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। सामाजिक चेतना से युक्त प्रत्येक साहित्यकार अपनी सृजनधर्मिता के बल पर एक उत्कृष्ट समाज के निर्माण का प्रयास करता है। किसी साहित्यकार की सामाजिक चेतना को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व होते हैं। किसी व्यक्ति की सामाजिक चेतना के निर्माण में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक और आध्यात्मिक स्थितियां प्रमुख भूमिका निभाती हैं। समय के अनुसार सामाजिक चेतना में परिवर्तन भी होता है। प्रोफेसर मैनेजर पाण्डेय ने प्राचीन और आधुनिक साहित्य की सामाजिक चेतना के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि- "आधुनिक युग में साहित्य में सामाजिक संदर्भो और राजनीतिक परिस्थितियों का जितना निर्णायक और व्यापक प्रभाव पड़ रहा है उतना पहले कभी नहीं रहा। आज के जमाने में साहित्य की दुनिया केवल सौंदर्य और प्रेम की एकान्तिक साधना के बल पर नहीं चलती, वह समाज के आर्थिक ढांचे, राजनीतिक परिवेश, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं से बहुत दूर तक प्रभावित होती है।"[2] नासिरा शर्मा की सामाजिक चेतना के निर्माण में उनके समय की सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक परिस्थितियों का योगदान है।

हिंदी साहित्य में स्त्री साहित्यकारों ने समाज को केंद्रीय विषय बनाया है। इनमें नासिरा शर्मा का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है। उनके उपन्यासों में उनकी सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। नासिरा शर्मा जीवन की मार्मिक अनुभूतियों की लेखिका हैं। उन्होंने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलुओं को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। नासिरा शर्मा के उपन्यासों

में घर, परिवार, समाज, बिरादरी, देश, विदेश, परंपराएं, रीति-रिवाज़, धार्मिक आचरण व मान्यताएं, स्त्री, पुरुष, नौकर, मालिक, अभाव, समृद्धि, सदाचार, कट्टरता आदि सभी पक्ष चित्रित हुए हैं। उन्होंने अपने लेखन की सार्थकता के बारे में लिखा भी है- "लेखन का अर्थ केवल आपबीती कहना या अपना सुख-दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है, उसे पचाना पड़ता है। उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"[3] नासिरा शर्मा के उपन्यास समकालीन समाज तथा उसके अंतर्मन को मुखरता के साथ अभिव्यक्त करते हैं।

आज की पीढ़ी पश्चिम के प्रभाव में भटकाव की शिकार है। वह अपने मूल संस्कारों से दूर होती जा रही है। वह दिखावे की प्रवृत्ति का शिकार हो रही है। नई पीढ़ी के पर्व और त्योहार मनाने का ढंग बदल गया है। वह पश्चिमी त्योहारों को ज्यादा उल्लास के साथ मना रही है। नासिरा शर्मा नई पीढ़ी के इस भटकाव पर चिंतित हैं। उन्होंने अपने उपन्यास 'अक्षयवट' में आंग्ल नव वर्ष पर आयोजित पार्टी का चित्रण किया है। वे जहीर नामक एक पात्र की नज़र से इस पार्टी का वर्णन करती हैं- "इस बीच समय किस तेजी से बदला है, इसका अंदाजा उन्हें आज हो रहा था कि हर लड़की-लड़के का कोई न कोई बॉयफ्रेंड या गर्लफ्रेंड था, जिसके साथ वह नए आने वाले वर्ष का सपना देख रहे थे। इनमें से जाने कितने जोड़े विवाह मंडप तक पहुंचे और कितनों की मित्रता साल के मध्य तक जाते-जाते टूट गई। संबंधों का इतनी जल्दी खिलना और उतनी और उतनी ही शीघ्रता से कुम्हला जाना शायद ही आज का यथार्थ है।" यहां नासिरा शर्मा यह भी समझाती हैं कि इस नई पीढ़ी को यदि उनके माता-पिता समझाना भी चाहें तो समझा नहीं पाते। इसके बावजूद वे बड़े-बुजुर्गों को एक आदर्श बनने की सलाह देती हैं। बाजारवाद और भौतिकवाद के आक्रमण से नई पीढ़ी को बचाने की जिम्मेदारी बड़े-बुजुर्गों की ही है। हमारा समाज अर्थ-प्रधान होता जा रहा है। उन्होंने लिखा है- "इस शहर को बाज़ार ने बिगाड़ा है और बाज़ार आया कहाँ से? बात सिर्फ पैसे की है। हमारा इलाका पैसे का लालची हो चुका है। बाहर का आया पैसा जो मर्दों के खून-पसीने की कमाई है, उनकी कुर्बानी और तन्हाई का निचोड़ है। वह अपनी जगह से चल हमारे बैंकों में जब पहुंचता है तो कभी दुगना तो कभी चौगुना हो जाता है। उस मेहनतकश इंसान के कुनबे वाले उससे सिर्फ पेट नहीं भरते बल्कि ऐय्याशी में लग गए हैं।"[4] उपन्यासकार ने मलक़ानूर नामक एक पात्र के माध्यम से दिखाया है कि समाज में पीढ़ियों के द्वंद्व को परस्पर तालमेल से ही सुलझाया जा सकता है। नई पीढ़ी नई सोच व विचारों के साथ आगे बढ़ रही है और पुरानी पीढ़ी अपनी मान्यताओं से उन्हें रोकना चाहती है। यह भी सही नहीं है।

आजादी के बाद भारतीय समाज में जमींदारी प्रथा का ख़ात्मा हुआ लेकिन उसकी जगह पूंजीवादी व्यवस्था ने जन्म ले लिया। गरीबों का शोषण यथावत रहा। नासिरा शर्मा ने 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में इस समस्या को चित्रित किया है। महरूख जिस गांव में नौकरी करती है वहां गरीब किसानों का शोषण हो रहा है। महरूख गणपत काका को इस शोषण से मुक्ति का रास्ता दिखाती है। लेखिका कामता गरीबों को समझाती हुई कहती है कि- "अब गलत बात नहीं सहनी…ठीक है, इस गांव का हर फैसला पक्के मकान वाले और पत्थर वाले लाला के घर तय होता है। मगर इसका यह मतलब नहीं है कि हम सब लोगन हथियार डाल के बैठ जाएं। हमारी बात वह भला क्यों समझें। वह तो हमें का करनी पड़िहें, अब कौनो चारा नाहीं है। एके सिवाय हम खुदय अपनी लड़ाई लड़ें।"[5] इसके बाद गणपत काका की चेतना जगती है। वे कहते हैं- "अत्याचारी का कौनो धर्म नाहीं होत बेटवा- ई राक्षस तो हम लोगन का निगले के वास्ते सदा रहिहैं।"[6] भारतीय समाज में शिक्षा के प्रसार के साथ जन-जागृति आई है। इस कारण लोग अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का विरोध कर रहे हैं। अब जातिगत बंधन कुछ ढीले हुए हैं। सामाजिक गैरबराबरी

और छुआछूत कम हुई है। इसके बावजूद जातिगत भेदभाव और शोषण की घटनाएं रोज सामने आ रही हैं। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने चित्रित किया है कि आज भी गांवों में पिछड़ी जातियों और दलितों के साथ अत्याचार हो रहे हैं। इस उपन्यास में दलित लड़की बिंदो को काशी उठाकर ले जाता है। लेकिन इस बार बिंदो के भाई द्वारा अपनी बहन के बलात्कार का बदला ले लिया जाता है। नासिरा शर्मा लिखती हैं- "घर लौटती बिंदो को अंधेरे में काशी अपने कमरे में घसीट ले गया था। इसमें कौन सी नई बात थी। हरिजनों पर यह जुल्म तो ढाया ही जाता रहा है। रो-धोकर, ग़म-गुस्से को पीकर सब कुछ सह लिया जाता है, मगर नई बात जो हुई थी, वह यह थी कि बिंदो के भाई ने काशी की आंतें बाहर निकाल ली थीं और बिंदो कुएं में समा गई थी।"[7]

नासिरा शर्मा ने 'अक्षयवट' उपन्यास में जहीर और उसके दोस्तों के माध्यम से व्यवस्था और उसमें आम आदमी की पीड़ा को चित्रित किया है। जहीर और उसके दोस्त व्यवस्था का विरोध करते हैं। उपन्यास में भ्रष्ट पुलिस-प्रशासन की कटु आलोचना की गई है। जहीर कहता है- "अपहरणकर्ता, बलात्कारी, डाकाज़नी, दंगा-फसाद, जिस्मफरोशी, नशाबाजी में या तो इनका हाथ होता है या फिर यह सीधे यह सब खुद करवाते हैं। यह भारतीय पुलिस है। इस दुनिया में यह लोगों के लिए नहीं बल्कि लोग इनकी खुशहाली के लिए पैदा किए गए हैं।"[8] आज भी भारत की शासन-व्यवस्था आम-जन की मूलभूत सुविधाओं से मुंह मोड़ चुकी है। केवल चुनाव के समय गरीबों और वंचितों को याद किया जाता है। आम जनता को लोकलुभावन मुद्दों पर बहलाया-फुसलाया जाता है। उनका भावनात्मक मुद्दों पर दोहन किया जाता है। इसी सत्य को उजागर करते हुए मास्टरजी कहते हैं: "इराक युद्ध के लिए अमेरिकी कांग्रेस ने राष्ट्रपति बुश को बिना देर किए 75 अरब डॉलर देने की घोषणा कर दी, मगर ऐसी कोई तत्काल घोषणा उसने जल-समस्या पर नहीं की और ऐसा ही हाल हमारे अपने देश का है। यहां पर जन-मानस से जुड़ी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जगह परमाणु बम निर्माण और परीक्षण पर धन खर्च करना उससे ज्यादा तर्कसंगत लगता है।"[9] 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में गांव की राजनीति का चित्रण किया गया है। महरूख गांव के लोगों को वोट की कीमत समझाती है। वह लोगों को बताती है कि समस्याओं के समाधान के आधार पर अपना प्रतिनिधि चुनें तभी परिवर्तन आएगा। लेकिन लछमिनिया का इस देश के लोकतंत्र से भरोसा उठ गया है। वह महरूख को ही समझाती हुई कहती है कि- "ई जमाना में कोउ भलेमानुस नहीं है। जइसे सांपनाथ वइसे नागनाथ। कहत तो रहे गणपत काका कि ई मान-मनौव्वल तो बस समझो बोट वाले दिन तक है, फिर हम लोगन का ना सियाराम दाऊ, ना गनाराम पहचानिहे। तब लगिहे वही कुकुर वाली धुत्कार और पीठ पर खुले आकास की घाम।"[10]

नासिरा शर्मा स्त्री और पुरुष समानता की पक्षधर हैं। उनके उपन्यासों में उनकी यह पक्षधरता स्पष्ट दिखाई देती है। वे एक ऐसे समाज की कल्पना करती हैं जहां किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो। उनकी यह कल्पना उनके उपन्यास 'शाल्मली' की स्त्री पात्र शाल्मली कहती है- "मेरे मन मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहां कोई किसी का दास नहीं है, फिर एकबार मैं बता दूं कि मैं पुरूष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूं। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जुझना है।"[11] 'शाल्मली' की नायिका एक प्रशासनिक अधिकारी है लेकिन वह घर के सारे काम भी करती है। उसका पति नरेश फिजूलखर्ची करता है। एक दिन वह परेशान होकर नरेश से वेतन के बारे में पूछती है तो नरेश चिढ़ जाता है। वह उसे मर्द बन रही हो कहकर उपहास उड़ाता है। यह सुनकर शाल्मली भी जवाब देती

है- "तुम औरत बनकर मेरा हाथ तो बंटाओ।"[12] यह उस आत्मनिर्भर स्त्री का आत्मसम्मान है जो घर और ऑफिस दोनों जगहों पर संतुलन बनाती है लेकिन पुरुष अपनी मानसिकता के कारण ऐसा नहीं करता। महरूख जब सेवानिवृत्त होने के बाद अपने मूल स्थान पर लौटती है तो देखती है कि उसके परिवार वाले पुस्तैनी घर बेचकर शहर बसने की योजना बनाते हैं। वे सभी महरूख से उसके रहने को लेकर सवाल करते हैं। महरूख इस सवाल का जवाब देती हुई बड़ी अच्छी बात कहती है- "एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो।...मेरा अपना घर वही पुराना है, जहां मैं पिछले तीस सालों से रह रही हूं। तुम लोग अपने-अपने घर लौट रहे हो, मैं अपने घर लौट रही हूं। इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है?"[13] 'शब्द पखेरू' उपन्यास में सूर्यकांत की दोनों बेटियां मनीषा और शैलजा बेटे की भांति घर-गृहस्थी का बोझ उठाने का प्रयास करती है। 'दूसरी जन्नत' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने बांझपन की समस्या से जूझ रही स्त्रियों विशेषकर मुस्लिम स्त्रियों को आईवीएफ तकनीक के प्रति जागरूक करती हैं। वे मजहब और विज्ञान के संतुलन को जीवन जीने का अभिन्न अंग बताती हैं। 'कुईयाजान' की समीना, 'ठीकरे की मंगनी' की महरूख, 'दूसरी जन्नत' की रुखसाना जैसी कई स्त्रियां हैं जो अपनी-अपनी तरह से समाज को बदलने का प्रयास कर रही हैं। समाज में व्याप्त शोषण, गरीबी, अत्याचार व अन्याय को खत्म करने के लिए जन-जागृति का अभियान चलाती हैं। जब शाल्मली से उसकी मित्र सरोज तलाक लेने के लिए कहती है तो वह पूरे पुरुष समुदाय पर टिप्पणी करती है। वह कहती है- "तुम्हारे सामने केवल पति से निपटने और उससे मुक्त होने की है, मगर मेरी नज़र में सही नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है।"[14] नासिरा शर्मा अपने उपन्यासों में अपने पात्रों के माध्यम से समकालीन समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। वे समाज के विविध स्वरूपों पर प्रकाश डालती हैं जिसे देखकर पाठक सोचने पर मजबूर हो जाता है और वह भविष्य के समाज को अपनी आंखों के सामने देखने लगता है।

निष्कर्ष - नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य में सामाजिक असमानता, विशेष रूप से दलितों और हाशिए पर पड़े समुदायों के प्रति संवेदनशीलता दिखाई है। उनके उपन्यास सामाजिक बोध को उजागर करते हुए समाज में व्याप्त शोषण और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं।नासिरा शर्मा की रचनाएँ मानवीय संवेदनाओं और जटिल मानवीय प्रवृत्तियों को उजागर करती हैं। उनके कथा साहित्य में रिश्तों के बनने-बिगड़ने का दंश और सामाजिक चेतना का गहरा चित्रण मिलता है।नासिरा शर्मा के उपन्यास धार्मिक, आर्थिक, और राजनीतिक पहलुओं को समेटते हुए सामाजिक चेतना के विविध आयाम प्रस्तुत करते हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. महेंद्र भटनागर, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य, पृष्ठ 17 से उद्धृत
2. प्रो मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ 11
3. संपादक, फिरोज अहमद, नासिरा शर्मा: एक मूल्यांकन, पृष्ठ 53
4. नासिरा शर्मा, कागज की नाव, पृष्ठ 49
5. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृष्ठ 169

6. वही, पृष्ठ 170
7. वही, पृष्ठ 101
8. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, पृष्ठ 292
9. नासिरा शर्मा, कुईंयाजान, पृष्ठ 89
10. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृष्ठ 82
11. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृष्ठ 165
12. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृष्ठ 106
13. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृष्ठ 197
14. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृष्ठ 165